International Indexed, Refereed Research Journal, ISSN- 2250-253X, (Print), e-ISSN-2320-544X February,2013

शोध पत्र- संगीत

जाति गायन

* डॉ. नित्यप्रिया श्रीवास्तव

* डी. फिल, संगीत प्रवीण, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

भारत में शास्त्रीय संगीत की परंपरा बड़ी प्राचीन है। राग के प्रादुर्भाव के पूर्व जाति गान की परंपरा थी जो वैदिक परंपरा का ही भेद था।जाती गायन प्राचीन गायन शैली है जोकि शास्त्रीय नियमों से बध्ध सुमधुर गायन शैली रही है। जाती गायन के विषय में भरत मुनि ने अपने ग्रन्थ में विस्तार से बताया है कि–''जातियाँ नाट्यशास्त्र में वर्णित ध्रुवा गीतों की स्वरलिपि या सांगीतिक अंग थी। विद्वानों के विचार से ध्रुवा गीत साहित्य व संगीत की मिश्रित बंदिशों थीं जो नाटक के दो भागों के बीच के समय में गायी जाती थीं अथवा साधारण जनता में भगवताराधना के लिए प्रयोग होता था। इस प्रकार जातियाँ संगीत की सुन्दर व रीति युक्त कुछ आकृतियाँ थीं जिन्हें राग का अग्रगामी या प्रस्तावना स्वरूप यच्तम बनतेवतेद्ध कहा जा सकता है।[1]
जाति से ही राग की खोज मानी जाती है।

^^Jfrxg% Lojkfn legkT tk;Ur bfr tkr;%A[2]

अर्थात् श्रुति, ग्रह आदि स्वर समूहों को जाति कहते है। मतंग की इस परिभाषा में श्रुति तथा ग्रह स्वरों के समूह को जाति कहा है श्रुति से तात्पर्य वह श्रवण योग्य सूक्ष्म ध्वनि जो संगीत में प्रयुक्त होती है तथा ग्रहादि स्वरों से तात्पर्य जाति में प्रयुक्त होने वाले मुख्य स्वर से है, अतः इस प्रकार जब स्वरों की योजना होती है, तब उसे जाति की संज्ञा प्रदान की जाती थी।

nhIrk;rk d:.kkuk ene/;e;kLr;kA
J`rhuk ;k·fo'k"kKk u l vkpk;Z mPprA

vFkkZr%– दीप्ता, आयता, करूणा, मृदु तथा मध्य, इन श्रुतियों को जो नहीं जानता वह आचार्य नहीं कहलाता।[3]

^^Hkjr us bu ikp tkfr;ks ;k J`fr;ks dk o.kZu bl çdkj fd;k g\S%&

(1½ nhIrk– जिसमें चमक हो जो देदीप्यमान हो। इसके अन्तर्गत बाद में उत्पन्न हुई शैद्री, वज्रिका, तीव्रा, उग्रा आदि है।

(2) vk;rk& जिसमें फैलाव व विस्तार का क्षेत्र अधिक हो। इसके अन्तर्गत क्रोधा, प्रसारिणी, संदीपनी, रोहिणी और कुमद्वती आती है। उनकी भी यही विशेषेता है।

¼3½ e`nq– जिसमें शान्ति और कोमलता हो। इसके समान विशेषताओं वाली रतिका, प्रीति, क्षिति और मन्दा इसके अन्तर्गत आती है।

¼4½ e/;k– जिसमें समान गति से चलने की क्षमता हो। इसके अन्तर्गत रक्ता, राम्या, रंजनी, भार्जनी, क्षोमिणी आती है।

¼5½ d:.kk– जिसमें कृपालुता या दयालुता और सहानुभूति की भावना हो। इसके अन्तर्गत दयावती, मदन्ती और अलापिनी है।[4]

tkfr d\s y{k.k&

जिस प्रकार आधुनिक समय में राग और उसके दस लक्षण माने जाते हैं वैसे ही जाति गान के निर्माण में दस लक्षणों का होना आवश्यक समझा जाता था।वास्तव में मूलरूप से प्राचीन जाति लक्षण ही थे जिसके आधार पर ही आधुनिक राग लक्षण का निर्माण किया गया। भरत के नाट्यशास्त्र में 'जाति' का ही विशेष वर्णन मिलता है। किसी स्वर समूह से किस प्रकार 'जाति' का ढाँचा कैसे बनता है इस पर विचार कर भरत ने अपने पुस्तक नाट्यशास्त्र में जतियों के दस लक्षण बताऐं है–

^xgka'kk rkjeUæk p U;klh·iU;kl ,o pA
vYiRok p cgRok p "kk·okM+for rFkkAA66AA[5]

अर्थात– (1) ग्रह, (2) अंश, (3) तार, (4) मन्द्र, (5) न्यास, (6) अपन्यास, (7) अलपत्व, (8) बहुत्वं, (9) औड़व, (10) षाऽव ये दस जाति के लक्षण है।इन लक्षणों को पाँच जोड़ों के रूप में देखा जा सकता है–

१–२–ग्रह–अंश
३–४–तार–मंद्र
५–६–न्यास–अपन्यास
७–८–अल्पत्व–बहुत्व
९–१०–षाडव– औडुव

जाति लक्षण का प्रयोजन है कि उसमें (जाति में) किस स्वर की प्रमुखता होगी, वह कहाँ से प्रारंभ होगा, कहाँ गीत की समाप्ति होगी, तार और मन्द्र का कैसा प्रयोग होगा, कौन सा स्वर दुर्बल और कौन सा साधारण होगा, एक या दो स्वरों का वर्जन कर किस प्रकार से षाडव व औडव रूप बनेंगे। जब ये सभी बातें किसी स्वर समूह में निश्चित नियम द्वारा समाहित होंगी तो वह जाति अथवा राग के अन्तर्गत माना जायेगा। इन्हीं नियमों को दस पारिभाषिक नाम देकर 'जाति

लक्षण' कहा गया है।

१–२ ग्रह–अंश–ग्रह का अर्थ है ऐसी जगह जहॉ से बंदिश को उठाया जाता है। आज कल भी 'उठान' शब्द का इस्तमाल होता मिलता है। यह संस्कृत का शब्द है।अंश का अर्थ किसी चीज का हिस्सा होता है। जाति के संदर्भ में इसका अर्थ हुआ ऐसा स्वर जो भाग बनाये। यानि जिसके माध्यम से मंद्र, मध्य और तार को विभाजित किया जा सके। प्राचीन काल में जाति व्यवस्था थी जिसका आधार ग्राम और मूर्छना रहा है। प्रत्येक ग्राम की सात सात मूर्छनायें होती हैं। मूर्छना का प्रारंभ जिस स्वर से होता था उसे 'अंश' के रूप में जाना गया। मूर्छना का अर्थ ही है सात स्वरों का आरोहण अवरोहण। अर्थात् जिस स्वर से मूर्छना प्रारंभ होने जा रही है वह उस मूर्छना का अंश स्वर होगा। सातों स्वरों को अंश स्वर बना कर हरेक ग्राम में सात मूर्छनायें बनाई जा सकती हैं। दूसरे शब्दों में ग्राम के मूल अन्तरालों को बिना बदले हुए मात्र अंश स्वर के आधार पर नया सप्तक बन जाता है।

इस प्रकार अंश बदलने से स्वरों के अंतराल बदल जाते हैं। इस प्रकार प्राचीनों को सप्तक में क्या स्वर लगेगा इसकी जानकारी न दे मात्र अंश स्वर बतला देने से काम चल जाता था।

३–४ तार मन्द्र – जाति गान में अंश स्वर तो मध्य सप्तक से ही प्रारंभ होता था और तार स्थान अंश स्वर से चार, पॉच या सात स्वर तक भी तार सप्तक में प्रयोग कियाजा सकता था। उसी प्रकार अंश से आठवें स्वर के नीचे तक मन्द्र का प्रयोग होता था। जाति या राग में कुछ तो
पूर्वांग प्रधान कुछ उत्तरांग प्रधान व कुछ सभी सप्तक में विचरण करने वाले होते हैं। अर्थात् जातियों और रागों को वास्तव में मंद्र तार और मध्य के बीच में ही घूमना होता है। इसीलिये तार – मन्द्र को जाति या राग के लक्षणों में स्थान दिया गया है।

५–६–न्यास –अपन्यास– जहॉ पूरे गीत की समाप्ति हो वह न्यास और जहॉ गीत के किसी खण्ड की समाप्ति हो तो वह अपन्यास कहलाता है। हम जानते ही हैं कि किसी गीत या गीत खण्ड की समाप्ति किसी भी स्वर में रुकने से नहीं हो जाती है। उसके लिये निर्धारित स्वर स्थान होना आवश्यक है।

७–८–अल्पत्व–बहुत्व– जाति या राग में जो स्वर दुर्बल प्रयुक्त होता है उसे अल्पत्व और जो स्वर प्रबल होता है उसे बहुत्व के नाम से जाना जाता है। इन दोनों के ही दो दो भेद हैं–

f&y?ku vYiRo]

„&vuH;kl vYiRo

जब किसी जाति या राग में कोई स्वर प्रयुक्त तो होता है पर उसको लॉघ जाते हैं, जैसे राग बिहाग में ऋषभ स्वर को आरोह करते समय लॉघते रहते हैं कृ यथा, नी स ग म ग कृ तब उसे लंघन अल्पत्व कहेंगे। इसी प्रकार से जब किसी स्वर को बिना उस पर ठहराव किये प्रयोग करते हैं तो उसे अनभ्यास अल्पत्व कहेंगे। यथा– राग पूरिया में ऋषभ स्वर। १– अनालंघन बहुत्व २– अभ्यास बहुत्व–ये दोनो ही अल्पत्व के उल्टे हैंय अर्थात् जिस स्वर का लंघन नही किया जा सकता वह अनालंघन बहुत्व, और जाति या राग में जिस स्वर का बार बार प्रयोग होता है वह स्वर अभ्यास बहुत्व कहलाता है।

९–१०– षाडव–औडव– सप्तक में एक या दो स्वरों का वर्जन करके षाडव या औडव जाति या राग बनते हैं। पं० ओंकार नाथ ठाकुर के अनुसार 'नवीनता या वैचित्र उपजाने में राग पद्धति में वर्जन का विशेष महत्व है। किन्तु मनमाने ढंग से वर्जन नहीं किया जा सकता। जो स्वर जाति का पूर्ण रूप में दुर्बल या अल्प होगा उसी का लोप या वर्जन हो सकेगा।' भारतीय संगीत में आज भी सम्पूर्ण षाडव औडव राग हैं जैसे – सम्पूर्ण राग–यमन, काफी, जयजयवन्ती, पूरियाधनाश्री। षाडव राग– मारवा, पूरिया, रागेश्री, बागेश्री। औडव राग– सारंग, मालकौंस, भूपाली इत्यादि।

जाति लक्षण के इस विश्लेषण से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय परंपरा में सांगीतिक मर्मज्ञता, अन्तर्विश्लेषणात्मकता, सूक्ष्म दृष्टि और गहन चिन्तन का बहुत गहरा सन्तुलन था जो विश्व में भारतीय दर्शन की एक मिसाल हैजाति के भेद– जाति के दो भेद माने गये है।– (1) शुद्धा (2) विकृता षड्ज ग्राम की जातियॉ –षाड्जी, आर्षभी, धैवती, नैषादी, गान्धारी, मध्यमा, पंचमी
उपरोक्त शुद्ध जातियों का नामकरण सप्त स्वरों के नाम से हुआ है–

e/;e xkeh dh tkfr;k &

(1) षड्जकैशिकी (2) षड्जोदीच्यण (3) षड्जमध्या–षड्ज ग्राम के अन्तर्गत आते है तथा (4) गान्धारीदीच्यवा (5) रक्तगंधारी (6) गांधार– पंचमी (7) मध्यमोदीच्यपा (8) नन्दयन्ती (9) कर्मात्वी (10) आन्ध्री (11) कैशिकी ये मध्यम ग्राम के अन्तर्गत विकृत जातियॉ हैं।[6]

"इस प्रकार सात आधार जातियॉ, जो लगभग 600–500 ई0 पू0 में प्रचलित हुई थीं, अठारह जातियों में परिणित व विकसित हो गई जैसा कि नाट्य शास्त्र में कहा गया है। इन्हीं 18 जातियों से छः ग्रामराग उत्पन्न हुए जिससे अनेकों उपराग निकले। उपरागों से भाषा राग और फिर विभाषा राग व विभाषा से अन्तर भाषा राग धीरे–धीरे क्रमिक विकास के रूप में सामने आए।[7]

fu"d"kr%

जातिगायन का हमारे हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में बहुत महत्त्व रहा है । धीरे धीरे देशकाल परिवर्तन ,जोकि प्रकृति का नियम ही है, उसके अंतर्गत गायन की विभिन्न शैलियों का जन्म हुआ और वो कहीं ना कहीं जतिगायन से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सम्बंधित रही है । उदाहरंस्वरूप हम कह सकते हैं की जातिगायन के लक्षणों में से एक है – षाडव–औडव जोकि जातिगायन का लक्षण तो है ही अपितु वर्त्तमान समय में प्रचलित राग के लक्षणों में से भी एक है। रागों की उत्पत्ति जातिगायन के आधार पर ही मानी जाती है , अर्थात संक्षेप में यह अवश्य ही कहा जा सकता है कि वर्त्तमान समय में गाये जाने वाले गायन शैलियों का आधार प्राचीनकाल में गाई जाने वाली जातिगायन शैली ही है ।

संदर्भ ग्रंथ

1. संगीतज्जली, ष भा, पृ–1 What are the jatis as described in Bharata's Natyashartra," The Journal of the Music Academy Madras, Vol. XXXIII 1962 Parts I IV page 124 surmi Prajnanananda.
2. संगीतज्जली, ष भा, पृ–1
3. नारदीय शिक्षा– नानद, भट्टशुभकरटीका सहित, प्रथम प्रपाठक सप्तमी कण्डिका, पृ0 50
4. ख्याल शैली का विकास– डॉ0 मधुबाल सम्सेवा– पृ0 34–351
5. नाट्यशास्त्र– भरत – पृ0 – 43
6. भारतीय संगीत का इतिहास– डॉ0 स्वाति शर्मा पृ0 123
7. Historical Development of Indian Music Page - 126